मासिक
RNI No. MPHIN/2004/14249
वर्ष - 20 अंक - 8
(जून - 2024)
Vol - XX Issue No - VIII
(June - 2024)

अक्षर वार्ता

मूल्य: 100 / रूपये
डाक पंजीयन क्र. मालवा डिवीजन - L2/65/RNP/399/2024-2026

कला-मानविकी-समाजविज्ञान-जनसंचार-वाणिज्य-विज्ञान-वैचारिकी की अन्तर्राष्ट्रीय पियर रिव्यूड शोध पत्रिका

Indexed in International Impact Factor Services (IIFS) Database and Indexed with IIJIF
Indexed in the International Institute of Organized Research (IIOR) Database
Monthly, International, Refereed Journal & Peer Reviewed
ISSN : 2349 - 7521 , IMPACT FACTOR : 8.0

» aksharwartajournal@gmail.com » www.facebook.com/aksharwartawebpage » +918989547427

AKSHARWARTA is registered MSME with Ministry of MSME, Government of India
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021

ISSN 2349 - 7521
RNI No. MPHIN/2004/14249

मासिक

अक्षर वार्ता

मूल्यः 100 /- रूपये

MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021

वर्ष-20 अंक - 8 , जून- 2024
Vol - XX, Issue No. VIII
June - 2024
Impact Factor - 8.0
aksharwartajournal@gmail.com

Monthly International Refereed & Peer Reviewed Journal

प्रधान संपादक
प्रो. शैलेन्द्रकुमार शर्मा
कुलानुशासक एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र.

संपादक
डॉ. मोहन बैरागी
अक्षरवार्ता अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका

संपादक मंडल

प्रो. जगदीशचन्द्र शर्मा, प्राध्यापक
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र.
प्रो. राजश्री शर्मा, प्राध्यापक
माधव महाविद्यालय, उज्जैन, मप्र.
प्रो. डी. डी. बेदिया, विभागाध्यक्ष
पं. जवाहर लाल नेहरू व्यवसाय प्रबंध संस्थान, व आईक्यूएसी प्रभारी, विक्रम युनिवर्सिटी, उज्जैन, मप्र.
डॉ. शशि रंजन 'अकेला' जनसंपर्क अधिकारी, आरजीपीवी, भोपाल, मप्र.
प्रो. उमापति दिक्षित, प्राध्यापक
केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, उप्र.
प्रो. मोहसिन खान, विभागाध्यक्ष
शासकीय महाविद्यालय, रायगढ़, महाराष्ट्र
डॉ. दिग्विजय शर्मा, सहायक प्राध्यापक
केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, उप्र.
डॉ. भेरूलाल मालवीय, सहायक प्राध्यापक
शा. नवीन महाविद्यालय, शाजापुर, मप्र.
डॉ. उपेन्द्र भार्गव, सहायक प्राध्यापक
महर्षि पाणिनि विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र.
डॉ. रूपाली सारये, सहा.प्राध्यापक
भाषा विभाग, देवी अहिल्या वि.वि., इंदौर
डॉ. अवनीश कुमार अस्थाना, एसो. प्रोफेसर,
डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम वि.वि, इंदौर, मप्र.
डॉ. पराक्रम सिंह, के.हि.सं., दिल्ली

विशेषज्ञ समिति

डॉ. सुरेशचन्द्र शुक्ल 'शरद आलोक' (नार्वे),
श्री शेर बहादुर सिंह (यूएसए), डॉ. रामदेव धुरंधर (मॉरीशस),
डॉ. स्नेह ठाकुर (कनाडा) डॉ. जय वर्मा (यू.के.), प्रो. गुणशेखर गंगाप्रसाद शर्मा (चीन), डॉ. अलका धनपत (मॉरीशस),
प्रो. टी. जी. प्रभाशंकर प्रेमी (बैंगलुरू), प्रो. अब्दुल अलीम (अलीगढ़), प्रो. आरसु (कालिकट), डॉ. रवि शर्मा (दिल्ली),
डॉ. सुधीर सोनी (जयपुर), डॉ. अनिल सिंह (मुंबई),
डॉ. तुलसीदास परौहा, महर्षि पाणिनि संस्कृत विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र.

सह संपादक

डॉ. उषा श्रीवास्तव (कर्नाटक), डॉ. मधुकांता समाधिया
(उत्तर प्रदेश), डॉ. अनिल जूनवाल (मप्र), डॉ. प्रणु शुक्ला (राजस्थान), डॉ. मनीष कुमार मिश्रा (मुम्बई/वाराणसी), डॉ. पवन व्यास (उड़ीसा), डॉ. गोविंद नंदाणिया (गुजरात), डॉ. रत्ना कुशवाह, (अंडमान निकोबाद), प्रो. डॉ. किरण खन्ना (अमृतसर, पंजाब)

आवरण चित्र - इंटरनेट से साभार

नोटः- अक्षरवार्ता में सभी पद मानद व अवैतनिक है।/ शोध पत्रिका में प्रकाशित सभी लेखों में लेखकों के अपने विचार है, संपादक मंडल का इससे सहमत होना आवश्यक नही हैं।

» विवेक से आनन्द : स्वामी विवेकानन्द की रचनात्मक मनोभूमि
डॉ. बुद्धदेव प्रसाद सिंह 07
» गुरू गोविंद सिंह और उनके निहंग योद्धाओं का श्रीराम जन्मभूमि मुक्ति संग्राम में योगदान
डॉ. रजत गंगवार 14
» भीष्म साहनी का अनुवाद-कर्म
सुनील कुमार पटेल 16
» भारत की आर्थिक प्रगति में किसान का योगदान
डॉ. पवन कुमार त्रिवेदी 19
» सांस्कृतिक जागरण के अग्रदूत : कवि रामधारी सिंह दिनकर
चंद्रकांत सिंह 22
» भारतीय संस्कृति और स्त्री
डॉ. तुल्या कुमारी 25
» श्रीमद्भगवद्गीता में संचार के रूप में शंख का प्रयोग
रवि प्रकाश 28
» अवतारवाद को लेकर कबीर की सामाजिक वेदना "दस अवतार निरंजन कहिए सो अपना न कोई।"
डॉ. रामायण प्रसाद टण्डन 30
» शैलेश मटियानी के उपन्यासों में पारिवारिक जीवन
पवन कुमार 32
» हिन्दी उपन्यासों में दिव्यांगों की सामाजिक उपेक्षा
राधा देवी 34
» राष्ट्र के निर्माण में रिपोर्ताज की भूमिका
कोकिला कुमारी 36
» भारतीय जनजाति कला में भीलों के प्रतीक और देवलोक
सोमेश कुमार सोनी 38
» शैक्षिक सम्प्राप्ति में समुदाय एवं शिक्षकों की भूमिका : एक अध्ययन
राजन लाल 40
» हिंदी के विकास में अमेरिकी प्रवासी भारतीयों का योगदान
भावना, डॉ. गीता पाण्डेय 43
» इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कहानियों में स्त्री विमर्श
डॉ. बुद्धमती यादव, रवि कुमार सेहरा 46
» राजनय, राजधर्म और प्रशासन : वाल्मीकीय रामायण के परिप्रेक्ष्य में
डॉ. पवनकुमार शर्मा 48
» प्रवासी हिंदी साहित्यकार और प्रवासी साहित्य की अवधारणा
हरि प्रसाद गौतम, डॉ. नीशी राघव 51
» डॉ. शिवप्रसाद सिंह के कथा साहित्य में जीवन मूल्य चिन्तन
डॉ. सौरभ यादव 55
» स्वतंत्रता आन्दोलन के बाद भू-धृति तथा राजस्व नीति (1858-1869)
डॉ. अरूण कुमार सिंह 58
» वर्तमान परिदृश्य और संत कबीर की प्रासंगिकता
डॉ. मिथलेश कुमारी 61
» 'लोरिकायन' लोकगाथा का सांस्कृतिक विवेचन
अखिलेश कुमार मौर्य, प्रो. परितोष कुमार मणि 63
» माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की शैक्षिक प्रशासन के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन
रूपेश कुमार, डॉ. ज्योति पाण्डेय 67
» इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में महानगरीय संस्कृति
नीतीश कुमार 69
» रामधारी सिंह दिवाकर की कहानियों में ग्रामीण जीवन का यथार्थ
सुनील कुमार, डॉ. चन्दन कुमार 72
» कन्यादान : शास्त्रीय पहलू और आधुनिक परिप्रेक्ष्य में बदलते स्वरूप का औचित्य
विमला भावनानी 'विभा' 74
» 'जॉर्ज पंचम की नाक' कहानी संग्रह में व्यंग्य का अनुशीलन
प्रज्योत पांडुरंग गावकर 77
» बाल-काव्य में नैतिक मूल्य
अर्जित पाण्डेय, डॉ. अरविन्द सिंह 80
» कमलेश्वर के कथा साहित्य पर आधारित चलचित्रों में बदलते जीवन-मूल्य
प्रमोद कुमार वर्मा, डॉ. युवराज सिंह 83
» गौतम बुद्ध के नैतिक-दर्शन की प्रासंगिकता
डॉ. सुषमा कुमारी 86
» नयी कहानी में पति-पत्नी सम्बन्ध का तनाव (मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव और कमलेश्वर की कहानियों के सन्दर्भ)
दीनानाथ गुप्ता 89
» भारत के स्वाधीनता आन्दोलन में हिन्दी भाषा की भूमिका : असम के सन्दर्भ में
डॉ. साइफुल इस्लाम 92
» महिला कहानीकारों की कहानियों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक यथार्थ : संदर्भ नई कहानी
सचिन टोपनो 95
» दलित चेतना का स्वर
डॉ. नमिता जैन, नमिता 98
» अलका सरावगी के उपन्यासों में ग्रामीण समाज में स्त्री-पुरूष
कविता कोठारी 101

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - VIII, June - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

दलित चेतना का स्वर

डॉ. नमिता जैन
नमिता

1. असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी, दिगंबर जैन कॉलेज, बड़ौत, बागपत
2. शोधार्थी, हिंदी, दिगंबर जैन कॉलेज, बड़ौत, बागपत

'दलित' शब्द का प्रयोग एक ऐसे वर्ग व जाति के लिए किया गया है, जो सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, और धार्मिक रूप से पिछड़ा हुआ हैं, ऐसा समाज जिसे सदियों से बहुत-सी सुख-सुविधाओं से वंचित रखा गया। दलित शब्द की उत्पत्ति की बात की जाए तो 'दलित' शब्द संस्कृत धातु के 'दल' से बना हुआ है जिसका अर्थ-तोड़ना, हिस्से करना और कुचलना आदि है वहीं दूसरी ओर संस्कृत हिंदी शब्दकोश में 'दलित' का अर्थ-जिसका दलन किया गया हो, गिरा हुआ और अविकसित माना गया। इसी प्रकार मानक हिंदी शब्दकोश में हम देखे तो 'दलित' का अर्थ मसला हुआ, रौंदा हुआ या जिसे दबाया गया हो, जिसे पनपने या आगे बढ़ने दिया ही न गया हो और ध्वस्त या नष्ट किया गया हो। अंग्रेजी डिक्शनरी में भी 'डिप्रेस्ड' का अर्थ 'अस्पृश्य' और 'डिप्रेस्ड क्लास' का अर्थ 'अछूत जाति' माना गया।[1] प्राचीनकाल से ही इस जाति, के लोगों को शूद्र, अस्पृश्य की संज्ञा दी गयी और भारत में वर्तमान समय में 'दलित' शब्द का अनेक अर्थों में उपयोग होता रहा है।

हिन्दू धर्म ग्रंथो के अनुसार इन्हें चातुर्य वर्ण व्यवस्था (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) में भी सबसे निचले पायदान पर रखा गया, आरंभ में यह वर्ण-विभाजन कर्म के आधार पर किया गया परंतु बाद में यह विभाजन जाति आधारित हो गया। वास्तव में इस जाति का निर्धारण भी कर्म के आधार पर ही हुआ था। वर्ण-व्यवस्था बहुत लंबे समय बाद जाति व्यवस्था के रूप में रूपांतरित हुई और जाति विकसित होने के साथ-साथ अस्पृश्यता भी समाज में व्याप्त हुई। यह अस्पृश्यता समाज में धार्मिक और राजनीतिक रूप से व्याप्त थी। अस्पृश्यता समाज में बहुत गहरे रूप से विद्यमान होने के कारण भारत के कई स्थानों पर इसे बहुत ही कठोरता से लागू किया गया। दलितों को शिक्षा से वंचित रखा गया ताकि वह अपने अधिकारों के प्रति सजग न हो जाए। इसी संदर्भ में डॉ. आंबेडकर ने कहा कि 'जहां कुछ लोगों के सिवाय अन्य लोगों को शिक्षा नही मिल पाती थी परंतु भारत एक ऐसा देश है, जहां प्रबुद्ध वर्ग जैसे कि ब्राह्मणों ने शिक्षा पर अधिकार ही नही रखा, बल्कि निम्न वर्गों के लिए शिक्षा ग्रहण करना अपराध मानकर उनकी जिह्वा काट दिए जाने की सजा अथवा शिक्षा ग्रहण किए जाने वाले अपराधियो के कान में पिघला हुआ शीशा डालने की व्यवस्था थी। इसका परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मणों ने सदियों तक शासित जातियों को शिक्षा के अधिकार से वंचित रखा।'

हम पाते हैं कि शिक्षा के बाद भी सामाजिक रूप से दलितों का बहिष्कार किया गया। डॉ. बाबा साहेब आंबेडकर अपनी पुस्तक 'जातिभेद का उच्छेद' में जयपुर की एक घटना का उल्लेख करते है बताते हैं कि 'जयपुर के चकवारा गांव में एक अछूत ने अपनी धार्मिक यात्रा से लौटने के पश्चात धार्मिक पुण्य के लिए अपने ही गांव के अछूत भाइयों को भोजन कराने का प्रबंध किया। उसने अपने सामर्थ्य अनुसार सारे पकवानों को घी में बनवाया। परंतु अभी वह लोग भोजन कर ही रहे थे कि तभी हिन्दू लोग लाठियां लिए सैकड़ो की संख्या में वही आ धमके। उन्होंने उनका भोजन बर्बाद कर दिया और खाने वालों को मारने लगे। उन्हें यह भी ज्ञात नहीं कि उन्हें किस लिए मारा जा रहा है वह सभी अपनी जान बचाकर भागने लगे। आखिर इन निहत्थे अछूतो पर हमला क्यो किया गया? इसलिए की एक अछूत आतिथ्य.दाता ने अपने अतिथियों के लिए घी में पकवान बनाने की ढिठाई की थी।'[2]

इस तरह हमें हजारों घटनाओं का जिक्र इतिहास में मिलता है जो समय-समय पर अछूतों पर हुए अत्याचार और उन्हें दबाने के लिए किया गया है, ऐसी घटनाओं के होने का उद्देश्य की कहीं दलित वर्ग अपने आप को बेहतर स्थिति में न कर ले या अपने आप को सभी सुख-सुविधाओं से परिपूर्ण न कर ले। जहां एक ओर हम 'दलित' शब्द के अर्थ को समझते हैं, उसी प्रकार हमें 'दलित चेतना' का क्या अभिप्राय है यह जानना भी आवश्यक है 'दलित चेतना' से तात्पर्य दलित समुदाय से संबंधित व्यक्तियों की जागरूकता और पहचान से है। दलित चेतना का सीधा संबंध 'दृष्टि' से है, परंतु वही 'दलित' जाति-बोधक नहीं, बल्कि समूह की अभिव्यंजना को अभिव्यंजित करता है। सामान्य अर्थ में देखें तो मालूम होता है कि दलित वह है, जो भारतीय समाज व्यवस्था में अस्पृश्य माने गए, जंगलों में जीवन-यापन करने को बाध्य, बेगार करते, कम मूल्य पर श्रम करते श्रमिक, बंधुआ मजदूर, वर्ण-व्यवस्था आदि में, जिनका आर्थिक, शैक्षणिक, सामाजिक, राजनीतिक, एवं धार्मिक रूप से शोषण हुआ है।

'दलित साहित्य के अग्रदूत गुरु रविदास' पुस्तक में डॉ चमन लाल कहते हैं कि 'यह दलित चेतना ही है, जिसने दलितों की चुप्पी तोड़ी है, जिसने उन्हें मुखर किया है और मुक्ति संघर्ष के लिए उनके भीतर एक जज्बा पैदा किया है। जब तक इस दलित चेतना को ठीक-ठीक पहचानने की दृष्टि और मानसिकता का अभाव रहेगा, तब तक दलित साहित्य की दिशा और उसके आंतरिक प्रवाह को पकड़ना कठिन होगा। अब सवाल यह उत्पन्न होता है कि आखिर दलित चेतना क्या है? इस पर विचार करने से पता चलता है कि हजारों सालों से शोषित, उत्पीड़ित, सामाजिक विद्वेष, धार्मिक प्रतिबंधों, मानवीय अधिकारों से वंचित, दीनहीन दलित नारकीय जीवन को भोग रहे थे।

जिसके पक्ष में न तो साहित्य था, न धर्म, न देवी-देवता, न तथाकथित विद्वत जन। उनकी गिनती निम्न से भी निम्न थी। न वह गांव की बस्तियों में रह सकते थे, न गांव की गलियों में एक सामान्य नागरिक की तरह वह चल फिर सकते थे। हजारों साल से वह इसी तरह अपना जीवन जीते रहे। समाज के उच्चवर्णीय लोगों ने उनका इस्तेमाल तो किया लेकिन जरूरत भर के लिए। उनके सुख-दुख की परवाह करने के लिए, न किसी अवतार ने जन्म लिया, न किसी राजा-महाराजा ने। कभी उनके दर्द को समझने की कोशिश की हीं नहीं गई। इस बीच उन्होंने अनेक बार संघर्ष करने के लिए कदम बढ़ाए, लेकिन धार्मिक प्रतिबंध इतने सख्त थे, कि हर बार उन्हें और ज्यादा दुख भोगने पड़े।'[3]

भारतीय समाज में 'जाति' एक महत्वपूर्ण तत्व है, जो समाज में व्यक्ति की पहचान, परिस्थिति और सम्मान का आधार है। जयप्रकाश कर्दम अपनी पुस्तक 'जाति एक विमर्श' में कहते हैं कि 'जाति-व्यवस्था बंद कोठरियों का एक ऐसा मकान है, जिसमें व्यक्ति जिस जाति में जन्म लेता है, आजीवन उसी जाति का सदस्य बनकर सुख या दुख को भोगता है। कर्मों का भी जाति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जाति की इसी व्यवस्था ने समाज में विषमता विद्वेष और अलगाव की भावना को जन्म दिया।'[4] इसी संदर्भ में हजारी प्रसाद द्विवेदी भी कहते हैं कि 'इस देश के लोग पीढ़ियों से सिर्फ जाति देखते आ रहे हैं व्यक्तित्व देखने की उन्हें न आदत है न परवाह।

जिस प्रकार हर मनुष्य में कोई न कोई आकांक्षा निहित होती है, ठीक उसी प्रकार दलित व्यक्ति के मन में भी असीमित आकांक्षाएं, संभावनाएं उपस्थित रहीं होगी, परंतु कुछ परिस्थितियां अथवा कुछ लोग उनकी प्रतिभा एवं संभावनाओं को रोकने का प्रयास करते रहते हैं, पर वास्तव में देखा जाए तो क्या दलित व्यक्ति के कोई सपने नहीं होते? क्या सपने देखने का अधिकार उनको नहीं है? हम देखते हैं कि दलित समाज पर सवर्ण समाज का ऐसा सामाजिक दबाव था कि दलित समाज परिवर्तन और विकास की बात स्वयं के लिए कभी सोच ही नहीं पाए। समाज में समय-समय पर परिवर्तन की लहर तो आई लेकिन इस परिवर्तन के प्रभाव को दलितों तक नहीं पहुंचने दिया गया। अपनी कुटिलता, दूर-दृष्टि और स्वार्थ-भावना से उच्च-वर्ण ने दलितों को शिक्षा और जागृति से दूर रखा, मात्र सहानुभूति और दया की भावना रखते हुए उन्हें अपना हित कभी समझने दिया ही नहीं गया। सुशीला टांकभौर अपने लेख 'दलित आंदोलन से जुड़ी स्त्रियों के प्रश्न' में कहती है कि 'दलितों को हमेशा उनके पैतृक रोजगार में बांधे रखने का प्रयास किया गया और हमेशा यह सतर्कता रखी गई, कि कहीं वह अपना विकास तर्क, ज्ञान और विवेक के साथ करके उनकी उच्चता को नकारने न लगे। इस प्रकार दलितों को हमेशा दलित ही बना कर रखा गया। देखा जाए तो ऐसी स्थिति में जब दलित पुरुष ही अपनी स्थिति से उबर नहीं पा रहे थे, तो दलित स्त्रियों के प्रश्न और समस्याएं तो बहुत दूर की बात थी। तब ज्योतिबा फुले और सावित्री बाई फुले और बाबा साहब के कार्य और प्रयत्नो से दलित जीवन में चेतना आयी। बाबा साहब अंबेडकर ने अपने अध्ययन में पाया कि आखिर दलित जीवन की समस्याएं क्या है? दलित नारी की समस्याएं क्या है? उनके अवनति के कारण क्या है? दलित समाज का विकास कैसे संभव हो सकेगा और प्रगति की ओर कैसे बढ़ सकेगा? लेकिन इतना सब होने के पश्चात भी यह नहीं कहा जा सकता की संपूर्ण दलित समाज जागृत हो गया है। उनमें पूर्ण चैतन्य की भावना जागृत हो गई है, स्थिति यह है कि अभी और भी अधिक चेतना प्रसार की आवश्यकता है।'[5]

आज सबसे बड़ी समस्या है-एकत्व की भावना का। अगर हमारे सामने कुछ गलत हो रहा है, तो हम सिर्फ मूक दर्शक बनकर उसे देखते है, अपनी कोई प्रतिक्रिया उसके प्रति नहीं दिखाते। गलत होने के पश्चात भी कुछ न बोलना भी उतना बड़ा अपराध है, जितना की उस अपराधी व्यक्ति का। वर्तमान समय में देखा जाए तो भारतीय समाज के ढांचे को लोकतांत्रिक मानवीय समाज बनाने के लिए मन से न तो कोई तैयार था, न प्रयत्नशील। यही कारण है कि आजादी के बाद भी दलित संबंधी समाज सुधार के अधिकांश काम कागजी या अधिक से अधिक कानूनी ही रहे। वे वास्तविक सामाजिक जीवन के बदलाव के रूप में सामने नहीं आए। आजादी के बाद का शासक समुदाय सिर्फ वोट की राजनीति के लिए दलितों को फुसलाने और बहकाने की कोशिश तो करते है, लेकिन उनके जीवन की वास्तविकताओं के बुनियादी परिवर्तन के लिए प्रभावशाली प्रयास नहीं करते। फ्रांसीसी विचारक फूको ने ठीक ही कहा है कि, 'ज्ञान सत्ता है। ज्ञान सत्ता का स्रोत भी है, और साधन भी। जो ज्ञान से वंचित है, वह सत्ता से दूर ही नहीं वंचित भी होता है। यही कारण है कि युगो-युगो से भारत में ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने अछूतों को ज्ञान की सत्ता से दूर रखा है और उन्हें गुलामी की जिंदगी जीने पर मजबूर किया है। आज जबकि दलित समुदाय लोकतंत्र की प्रक्रिया में सत्ता के अपने हिस्से की मांग कर रहे है। तब यह जरूरी है कि वह ज्ञान के क्षेत्र में अपनी जगह की खोज करें और अपनी आवाज बुलंद करने का प्रयास करें।'[6] को देखते हुए कवि बिहारीलाल हरित ने दलितों की पीड़ा को व्यक्त करते हुए एक कविता लिखी साथ ही उन्होंने दलितों को अपनी कविता के माध्यम से जागरूक करने का प्रयास किया। दलितों की दुर्दशा पर बिहारीलाल हरित ने लिखा कि-

'एक रुपये में जमींदार के, सोलह आदमी भरती।
रोजाना भूखे मरते, मुझे कहे बिना ना सरती॥
दादा का कर्जा पोते से, नहीं उतरने पाया।
तीन रुपये में जमींदार के, सत्तर साल कमाया॥'[7]

राजनेता अपने राजनीतिक लाभ हेतु दलितों के प्रति किसी भी प्रकार की मानवीय संवेदना नहीं रखते बल्कि, वह सिर्फ ऊपरी तौर पर सांत्वना देते हैं, उनके दर्द को दूर नहीं करते। कहा भी गया है 'जांके पांव न फटी बिवाई, वो क्या जाने पीर पराई' अर्थात उच्चवर्ण या सामंतवादी समाज ने न कभी दलितों पर हुए शोषण, अत्याचार को देखा है, न सहा है, तो वह कैसे उसे अनुभूत कर सकते हैं? कैसे उसकी व्यथा को अभिव्यक्त कर सकते हैं। वह सिर्फ अपने लाभ के लिए ऊपरी तौर से सांत्वना देते हैं।

दलित चेतना मुख्य उद्देश्य बंधुता और स्वतंत्रता की मांग है। पुनर्जन्म, ब्राह्मणवादी समाज-व्यवस्था का विरोध, हिंदू देवी-देवताओं के प्रति अनास्था आर्थिक क्षेत्र में पूंजीवाद का विरोध, वर्ण विहीन, वर्ग विहीन समाज की पक्षधरता, स्त्री के प्रति समानता का भाव आदि कुछ विशिष्ट रूप है जो दलित चेतना को प्रभावी बनाता है। दलित चेतना का सरोकार इन प्रश्नों से बहुत गहरे तक जुड़ा है कि मैं कौन हूं? मेरी क्या पहचान है?[8]

चातुर्वण्य समाज-व्यवस्था के कारण भक्ति काल में संतों को भी समाज के अवहेलना सहन करनी पड़ी। ईश्वर भक्ति के लिए उन्हें मंदिर के बाहर ही बैठना पड़ा। यहां यह बात सभी का ध्यान आकर्षित करती है कि कबीर और रविदास के गुरु रामानंद माने जाते हैं, जो सगुण-धारा के भक्त हैं। लेकिन उनके शिष्य कबीर और रविदास निर्गुण-धारा के संत है। दूसरी ओर मीरा जो की राजघराने से संबंध रखती हैं और रविदास की शिष्य मानी

जाती हैं वह भी सगुण उपासक हैं, जबकि उनके गुरु रविदास निर्गुण है। इन तथ्यों से यह बात स्पष्ट होती है की भक्ति में भी जन्मना 'जाति' आड़े आती थी। इतना ही नहीं रविदास अस्पृश्य थे, इसलिए उनके लिए भी गंगा प्रतिबंधित थी, वह गंगा स्नान के लिए नहीं जा सकते थे। इसी विवशता में रविदास को भी कहना पड़ा कि 'मन चंगा, तो कठौती में गंगा।'[9]

जीवन के अनुभवों को देखने और समझने की उनकी दृष्टि में जो विद्रोह और नकार है, वह एक आवेग है जिसकी सामर्थ्य उसकी 'वेदना' में है और यही वेदना दलित साहित्य की जननी है। क्योंकि हजारों साल की यह वेदना दलित साहित्य में समूह रूप में व्यक्त होती है। यह वेदना एक 'मैं' की वेदना नहीं है, बल्कि पूरे दलित समाज की है इसलिए इस वेदना का स्वरूप सामाजिक है। सबसे बड़ी बाधा है. परंपरावादी, सामंती सोच जो संकीर्ण मानसिकता की देन है, तथा यह समाज और साहित्य में बहुत गहराई तक विद्यमान है।[10] पर वह प्रयास ही क्या जो सूरज की रोशनी तो चाहता है, परंतु स्वयं के विकास के लिए प्रकाशमान न हो पाए।

अतः हम कह सकते है कि जब मनुष्य में चेतना का संचार होता है तो निश्चित ही उसके आसपास का वातावरण उससे अवश्य प्रभावित होता है और ऐसे समय में जहां दलितों के ऊपर हमेशा से अत्याचार, शोषण हमें देखने को मिलता है, वहां उसमें जागृति के कारण विरोध या विद्रोह की शक्ति स्वयं ही उत्पन्न हो जाती है। जहां बाबा साहब ने सभी को दलितों को संगठित होकर, संघर्ष करने का मनोबल दिया, वही विरोध के प्रति विद्रोह करना और अपने अधिकारों के प्रति आवाज उठाने का सुझाव दिया। उनका लक्ष्य दलित समाज को स्वाभिमान, स्वावलंबन एवं अस्मिता के लिए कृतसंकल्प होकर सतत प्रयासरत रहना आवश्यक है और आत्माभिव्यक्ति के साथ चेतना और साहस उत्पन्न करना ही दलित चेतना का लक्ष्य और संदेश भी है।

संदर्भ सूची :-

1. 'रूपचंद्र वर्मा, मानक हिंदी कोश (प्रयाग साहित्य सम्मेलन 1964) पृष्ठ संख्या-35
2. डॉ0 बाबा साहेब आंबेडकर (सम्पूर्ण वाङ्मय,भाग 17, पृष्ट सं. 64)
3. 'दलित साहित्य के अग्रदूत-गुरुरविदास', 'डॉ चमन लाल, आधार प्रकाशन, प्रथम संस्करण.1998, पंचकूला, पृष्ठ संख्या-78
4. 'जाति एक विमर्श संपादक. जयप्रकाश कर्दम, मुहिम प्रकाशन, हापुड़, प्रथम संस्करण.1999, पृष्ठ संख्या-9
5. 'दलित साहित्य 1999-संपादक-जयप्रकाश कर्दम, सुशीला टाकभौर दलित आंदोलन से जुड़ी स्त्रियों के प्रश्न, पृष्ठ संख्या-113
6. वही, विचारको को वर्ग के साथ-साथ वर्ण भेद पर भी सोचना चाहिए प्रो0 मैनेजर पांडे, पृष्ठ संख्या-49
7. गोर्धन सिंह बिहारीलाल शाहदरा-'अछूतों का वेताज बादशाह' सन 1856 पृष्ठ संख्या-5
8. ओमप्रकाश वाल्मीकि-दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2013, दलित साहित्य का वैचारिक संघर्ष, पृष्ठ संख्या-59
9. दलित साहित्य-अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, ओमप्रकाश बाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, हिंदी दलित कविता और संत साहित्य, पृष्ठ संख्या-60
10. वही, पृष्ठ संख्या-68